महर्षि दयानन्द सरस्वती

३ जून १९३३

चौधरी चरण सिंह

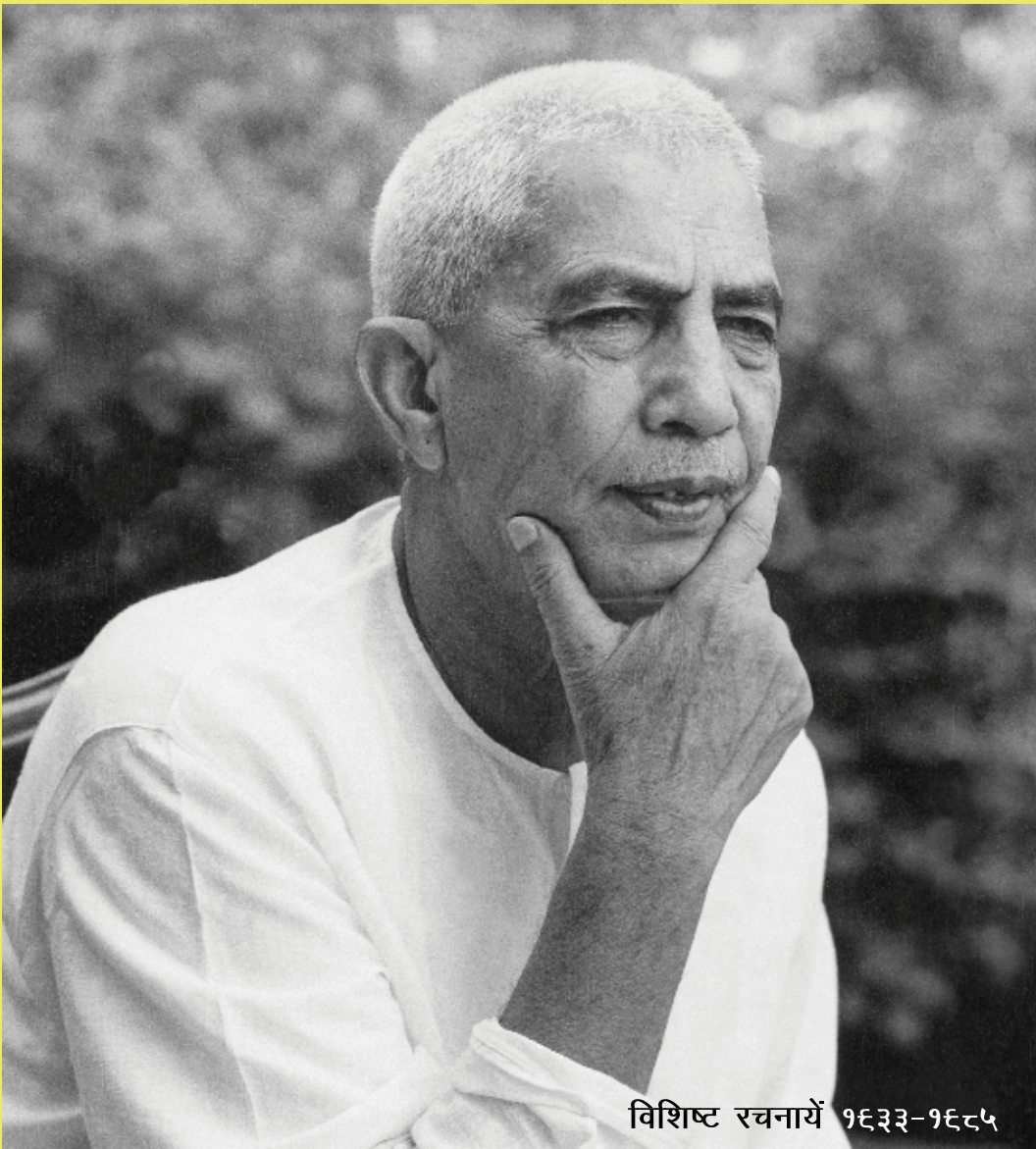

विशिष्ट रचनायें १९३३-१९८५

२६ जनवरी २०२२
चरण सिंह अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित
www.charansingh.org
info@charansingh.org

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन को केवल पूर्व अनुमति के साथ
पुनः प्रस्तुत, वितरित या प्रसारित किया जा सकता है।
अनुमति के लिए कृपया लिखें info@charansingh.org

अक्षर तथा आवरण संयोजन राम दास लाल
सौरभ प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ग्रेटर नोएडा, भारत द्वारा मुद्रित।

चरण सिंह के पिता मीर सिंह तथा माता नेत्र कौर, १९५०

चरण सिंह का जन्म २३ दिसंबर १९०२ को "एक साधारण किसान के यहां छप्पर छवाये मिट्टी की दीवारों से बने घर में हुआ था, जहां आंगन में एक कुंआ था, जिसका पानी पीने और सिंचाई के काम आता था।"* संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के मेरठ जिले के नूरपुर गांव में एक पट्टेदार गरीब किसान की कच्ची मढ़ैया में पैदा हुआ यह शिशु आज़ाद भारत में देहात की बुलंद आवाज बना।

* चरण सिंह के अपने शब्दों में

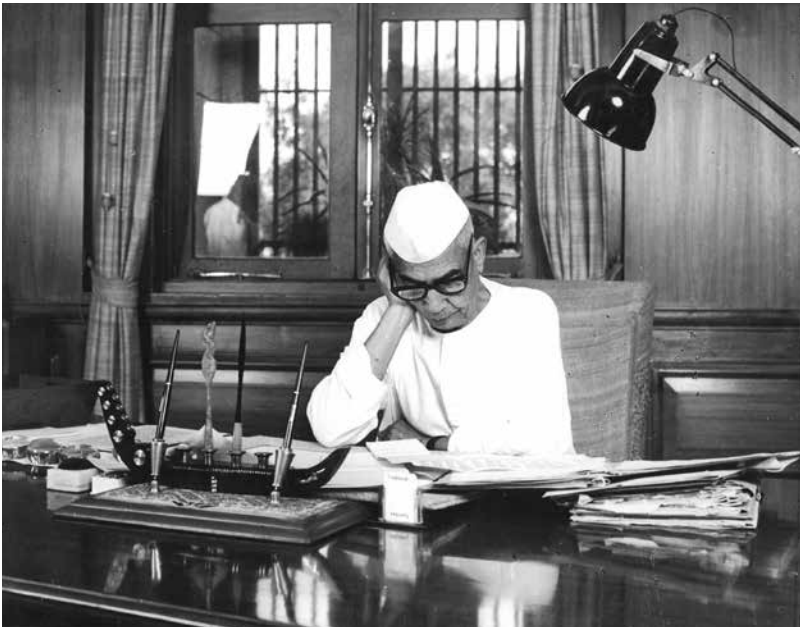

चौधरी चरण सिंह
भारत के प्रधान मंत्री। दिल्लीं, १९७९

ग्रामीण भारत के जैविक बुद्धिजीवी

१
हमारा दायित्व?

चौधरी चरणसिंह के जीवन पर महर्षि दयानन्द का गहरा प्रभाव था। जिस समय अजमेर में 'महर्षि दयानन्द सरस्वती अर्द्ध–शताब्दी समारोह' का आयोजन किया गया था, उस अवसर पर चौधरी चरणसिंह ने एक लेख लिखा था–'हमारा दायित्व' (ह्वाट इज अवर ड्यूटी?) यह लेख दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ३ जून १९३३ के अंक में प्रकाशित हुआ था।

इस लेख में चौधरी साहब ने आर्य–पथ के अनुयायियों का आह्वान करते हुए लिखा है कि नवीन स्फूर्ति और प्रेरणा के साथ हम अपने महान गुरू के कार्यों की पूर्ति में जुट जायें, जो अजमेर में उनसे अधूरे छूट गए थे; हमारी यात्रा का यही पाथेय है।

महर्षि दयानन्द को कौन नहीं जानता? उन्होंने हमें ऐसे निराकार ईश्वर में विश्वास करने की शिक्षा दी थी, जो कभी जन्म नहीं लेता। उनका नारा था "वेदों की ओर चलो"–आर्य संस्कृति की यही आधार–शिला है, इसी पर उन्होंने अपने धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों को आधारित किया है। उन्होंने वर्ण–श्रेष्ठता अथवा ब्राह्मणत्व के लिए केवल योग्यता को कसौटी निर्धारित किया था, जाति विशेष में जन्म को नहीं। हिन्दू राज्य–व्यवस्था की शक्ति को क्षीण करने वाली सामाजिक असमानता की समस्या का समाधान उन्होंने इस प्रकार किया था। उन्होंने महिला वर्ग को भी पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करने का समर्थन किया था और इस क्षेत्र में वह गौतम बुद्ध तथा शंकर से भी आगे निकल गए थे।

शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के लिए भी महर्षि दयानन्द ने दुस्साध्य प्रयत्न किए थे। उन्होंने अनिवार्य शिक्षा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था और दीर्घकाल से भुला दी गई 'गुरुकुल शिक्षा–पद्धति' का पुनरावर्तन भी किया था, जहां बड़े तथा छोटे बालक–समान स्तर पर–शहरी जीवन के विकृत वातावरण से मुक्त होकर, अध्यापकों की

व्यक्तिगत समीपता से लाभान्वित होते हुए, शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। उनके अनुसार छात्रों के लिए ब्रह्मचर्य अनेक लाभ प्रदान करने वाला होता है। उन्होंने एक मनीषी के रूप में हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था।

सन्तों की लम्बी परम्परा में गैर–हिन्दू लोगों के लिए हिन्दू धर्म के द्वार खोलने वाले वह पहले संत थे। एक समय ऐसा था, जब एक हिन्दू अपने धर्म पर लज्जित होता था और ईसाई मत को अंगीकार करके लज्जा से मुक्ति की खोज किया करता था, किन्तु महर्षि के परिश्रम के लिए धन्यवाद है कि आज एक हिन्दू अपने अन्तर्मन में वैदिक धर्म के सत्य से आश्वस्त होकर और अपने मत के समर्थन में विश्वास के साथ, गर्दन ऊंची उठाकर घूम सकता है।

महर्षि दयानन्द ने इस मत का जमकर विरोध किया था कि यह संसार विकारों का घर है, अतः इससे दूर रहना चाहिए। समाज के प्रति एक सामान्य हिन्दू की इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि वह सिर्फ अपने मोक्ष के विषय में ही प्रयत्नशील रहा। महर्षि दयानन्द ने प्रतिपादित किया था कि जीवन के प्रति यह नकारात्मक दृष्टिकोण, यह व्यक्तिवादी चेतना, जो जैन तथा बौद्ध धर्मों के प्रचार का विकृत प्रभाव है, भारत के राजनीतिक पराभव का प्रमुख कारण है। महर्षि दयानन्द भारतवर्ष के अतीत के प्रति श्रद्धा रखते थे और उनका विश्वास था कि विश्व के अन्य भागों में ज्ञान का प्रसारक स्रोत भारतवर्ष ही था। उन्होंने अपने देशवासियों की दृष्टि के सामने विलुप्त आर्य वैभव को फिर से प्रस्तुत किया था और उनको आश्वस्त किया था कि यदि हम उस मार्ग पर फिर से आसीन हो जायें और कार्य करना प्रारम्भ कर दें, तो गौरव–वृद्धि की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता।

समाचार–पत्र के एक स्तम्भ में उस महान आत्मा द्वारा किए गए समस्त हितकर कार्यों को गिनाना एक निरर्थक कार्य होगा, किन्तु यह निश्चित है कि ऐसे महान व्यक्ति के प्रति हमारी श्रद्धा अपेक्षित है। पचास वर्ष पूर्व, क्रूर मृत्यु ने उनको हमारे बीच से उठा लिया था।

आर्य समाज की सर्वोच्च कार्यकारिणी समिति, जो भारत में आज तक सुसंगठित समिति है, ने आगामी दीपावली के अवसर पर अजमेर में, उस महान गुरू की 'अर्द्ध–शताब्दी स्मरणोत्सव' मनाने का निश्चय किया है। इस सम्बन्ध में आर्य समाज के अनुयायियों का विशेष रूप से तथा अन्यों का सामान्य रूप से क्या दायित्व है? इस स्मरणोत्सव की आवश्यकता तथा उपयुक्तता के विषय में मतभेद हो सकते हैं, किन्तु एक बार जब इसका निश्चय कर लिया गया है, तब हममें से किसी को इसे बुरा कहने

की आवश्यकता नहीं है। क्या हम लोग अभी तक इसके विषय में बहस करते रहेंगे? इस विषय में अब समस्त विवाद समाप्त हो जाने चाहिएं और प्रत्येक समाज को, अपनी शक्ति के अनुरूप इसको सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

हमें लाखों की संख्या में महर्षि द्वारा रिक्त किए गए स्थान पर एकत्रित होकर, आर्य समाज की शक्ति तथा क्षमता का प्रमाण उसी प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए, जिस प्रकार उस स्थान पर एकत्र होकर किया था, जहां वह गुरुवर स्वामी बिरजानन्द के चरणों में बैठे थे।

विचारों की स्वतंत्रता

महर्षि दयानन्द चरम सीमा तक विनम्र थे। अन्यों के समान उन्होंने स्वयं को ऋषि होने, परमात्मा का अवतार होने अथवा अतिमानवीय सत्ता का अंग होने का दावा नहीं किया, हालांकि ऐसा वह सरलतापूर्वक कर सकते थे। इसके विपरीत, उन्होंने बड़ी दृढ़तापूर्वक व्यक्ति–पूजा का विरोध किया। उन्होंने किसी नवीन सत्य अथवा धर्म के उपदेश का दावा नहीं किया, वरन् उसी का उपदेश देते रहे, जिसका प्रतिपादन ऋषियों द्वारा किया गया है। अपने अमोघ होने का दावा भी कभी नहीं किया। उन्होंने आर्य समाज के छठे नियमानुसार सबके विचार स्वातंत्र्य का समर्थन किया था। महर्षि दयानन्द विनम्र थे, क्या इसी कारण हम उनको आदर प्रदान करने से पीछे हट जायेंगे? महर्षि आत्म–अस्वीकृति की साक्षात प्रतिमा थे, इसलिए यह हमारा दायित्व है कि हम अपनी श्रद्धा तथा भावना के पुष्प उनको समर्पित करें और अपने आचरणों द्वारा इस शंकालु विश्व को यह बता दें कि वह युग के महान व्यक्तियों में से एक हैं।

समस्त प्रकार की लज्जा, अंधविश्वास, भ्रान्त धारणाएं एवं विरोधी संसार के विरुद्ध महर्षि दयानन्द एक ऐसे सुदृढ़ स्तम्भ की भांति खड़े रहे, जिसने समस्त तूफानों को चुनौती दी हो। कैथोलिक ईसाइयों के एक विकारग्रसित रिवाज के विरोध में मार्टिन लूथर ने विद्रोह किया था, लेकिन महर्षि को अनेक धर्मों तथा सामाजिक रीति–रिवाजों के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा था। जनता की प्रशंसाएं उनके भाग्य में नहीं आईं। राजनीतिक नेताओं की तरह प्रशंसात्मक भीड़ों की जयकारें पाने की अपेक्षा उनको जूतों, पत्थरों तथा विष के रास्ते से सफलता अर्जित करनी पड़ी थी। महर्षि दयानन्द को तब तक आराम से नहीं बैठना था, जब तक कि धर्म का पूर्णतःसंस्कार नहीं हो जाता। उनके विरोध तथा आलोचना का विषय सनातन धर्म की तरह इस्लाम तथा ईसाई धर्म भी बना। विरोधियों को

उनकी कठोर आलोचना का प्रभाव अनुभव करना पड़ा था। इस आलोचना से मुक्ति पाने के लिए उनको अपना घर व्यवस्थित करना पड़ा था, यही कारण है कि आज हम देखते हैं कि सभी धर्मों के लोगों का उद्देश्य अपने धर्म का संस्कार करना हो गया है। क्या हम विश्वासपूर्वक यह कह सकते हैं कि हमने स्वामीजी का यह कार्य पूरा कर लिया है? मेरा मत है कि हम अभी ऐसा नहीं कर पाये हैं। आज भी लोग भ्रान्त धर्म की छाया में पल रहे हैं, पुजारीपन यद्यपि विघटित हो रहा है, पर अभी तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। अजमेर में हमारे विद्वानों को एकत्र होकर इस तथ्य पर विचार करना चाहिए कि वे कौन से तरीके हो सकते हैं, जिनके द्वारा इस प्राचीन भूमि पर वर्तमान भ्रान्त धर्मों को मिटाने का कार्य प्रारम्भ किया जाए?

सत्य की खोज

जब तक महर्षि जीवित रहे, तब तक हमने प्रत्येक सम्भव–घृणा तथा विरोध का व्यवहार उनके साथ किया। जहां कहीं वह प्रकटित हुए, लोगों ने उनका विरोध किया, कोई ऐसा मंच नहीं था, जिससे उन्होंने लोगों को सम्बोधित किया हो और उस पर उनका विरोध न किया गया हो। अपने पार्थिव शरीर के साथ, जब तक वह इस पृथ्वी पर विचरण करते रहे, तब तक घातक की तलवार और विष देने वालों का प्याला उनके भाग्य में लिखा था। मेरठ आर्य समाज अधिवेशन के, अपने अंतिम सम्बोधन में उन्होंने घोषणा की थी कि जब तक वह जीवित हैं, तब तक आर्य समाज तथा उनको घृणा की दृष्टि से देखा जायेगा, लेकिन एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जबकि आर्यसमाज के कार्यों का पुष्प–हारों से सम्मान किया जायेगा। ये शब्द पैगम्बर की तरह थे, समय की गति के साथ उनके कार्यों को अधिकतर स्वीकृति मिलती रही है और शीघ्र ही वह असली रूप में जाने जा सकेंगे।

स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित आर्य–समाज के सिद्धांतों को विश्व के अनेक विद्वान् मान्यताएं प्रदान करते जा रहे हैं। इस समय, भारत की भूमि पर ऐसा कोई आन्दोलन मौजूद नहीं है, जिसका श्रीगणेश महर्षि द्वारा साठ वर्ष पूर्व न कर दिया गया हो। स्वामीजी ने इस देश को संगठन का वरदान प्रदान किया था। हमको अजमेर में उस महान् सन्यासी को अपनी श्रद्धा, प्रशंसा तथा सम्मान इसलिए समर्पित करने के लिए एकत्र होना चाहिए, जिसके ऐतिहासिक उद्‌बोधन के फलस्वरूप हम युगों की दासता के प्रति पहली बार सजग हुए थे। ऐसे महर्षि दयानन्द को, जो

संस्कृति का प्रतीक बन गया था, हम पूर्णतः बिना किसी विवाद तथा संकोच के अपनी श्रद्धांजलियां समर्पित करेंगे।

मानव–इतिहास में उनका संन्यास अभूतपूर्व था। सत्य के अनुसंधान के प्रति उनके भावुकतापूर्ण शोध ने उन्हें अपना घर जीवन के आरम्भ में ही छोड़ने के लिए अनुप्रेरित किया था और उन्होंने अद्वितीय पावनता का जीवन–यापन भी किया था। उनका अद्वितीय ब्रह्मचर्य, उनकी शिक्षा, उनका दृढ़ विश्वास, उनकी निर्भीकता, परमात्मा के अस्तित्व में अनुपमेय विश्वास के साथ जीवन और अपने उद्देश्य की ईमानदारी आदि कुछ ऐसे गुण थे, जिन्होंने उनको अप्रतिरोध्य शक्ति बनाया था। उनके गतिशील व्यक्तित्व के परिणामस्वरूप आस्थाहीन व्यक्ति भी उनकी प्रशंसा करने के लिए विवश हो गए थे। जो लोग उनकी भर्त्सना करने के लिए आये थे, वे उनकी प्रार्थना करने पर मज़बूर हुए। उन्होंने हमारे लिए लिखा तथा जीवन व्यतीत किया था। इस ऋण से हम किस प्रकार मुक्त हो सकेंगे? निश्चय ही उनके द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलकर, उस कार्य को सम्पादित करके, जो उनको बहुत प्रिय था–वैदिक धर्म–जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन तथा रक्त समर्पित कर दिया था, का प्रचार करके और जैसी कि वह हमसे अपेक्षा करते थे, सच्चे वैदिक आर्य बनकर ही हम उस ऋण से मुक्त हो सकते हैं। हमको स्वयं महर्षि के उदाहरण से अनुप्रेरित होने की आवश्यकता है। हमें अजमेर में एकत्र होने की आवश्यकता इसलिए है, ताकि हम उस शक्ति के स्रोत से नवीन स्फूर्ति ग्रहण कर सकें। अजमेर में हम अपनी क्षमता का मूल्यांकन कर सकेंगे, अपनी शक्ति का अनुमान लगा सकेंगे और उसके पश्चात् यदि ईश्वर की कृपा हुई, तो भारतवर्ष की युवा पीढ़ी को नास्तिकता के ज्वार से प्रभावित करने वाली विचारधारा के विपरीत एक प्रबल संघर्ष खड़ा कर सकेंगे।

हमको अजमेर में क्या करना चाहिए, इसके विषय में विस्तार के साथ मैं कुछ भी नहीं कहूंगा। इस विषय में सोचना हमारे अग्रजों का कार्य है। आर्य पुरुष, आर्य महिला तथा आर्य कुमारों से मेरा अनुरोध है कि वे अजमेर की महान यात्रा पर निकल पड़ें और उसके पश्चात् नवीन स्फूर्ति तथा प्रेरणा के साथ उस अपूर्ण कार्य की पूर्ति पर जुट जायें, जिसे हमारे महान गुरू ने अजमेर में अधूरा छोड़ दिया था। साथियो, हमारी तीर्थ–यात्रा का यही पाथेय है।

२
महर्षि का जीवन दर्शन

महर्षि दयानन्द सरस्वती की पुण्यतिथि (१९८३) पर चौधरी चरणसिंह ने यह लेख एक स्मारिका के लिए लिखा था। स्वामी जी के जीवन–दर्शन और चिन्तन पर आधारित इस लेख में चौधरी चरण सिंह ने कुछ ऐसे सवाल उठाए हैं, जो राष्ट्रीय समस्या के रूप में हमारे सामने हैं। जातिवादी व्यवस्था, नारी वर्ग के समान अधिकार, सामाजिक अन्याय, समान शिक्षा का जन्मसिद्ध अधिकार तथा राष्ट्र–भाषा की समस्या–ये ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर स्वामी जी ने स्पष्ट विचार व्यक्त किए थे। चौधरी साहब का यक्ष–प्रश्न है कि क्या हम स्वामी जी के बताए रास्ते से आज भटक नहीं गए हैं?

आधुनिक भारत में महात्मा गांधी के नाम का जो महत्त्व है, वही महत्त्व इस देश के अगणित व्यक्तियों के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयाराम मूलशंकर अथवा 'मूलजी' का है। उनका जीवन तथा उनके कार्य बहुत बड़ी सीमा तक स्वाधीन भारत की योजना की प्रेरणा के आधार बने थे। उनके स्वर्गवास के सात दशकों के पश्चात् यह आधार स्पष्ट हो गया है।

बीती शताब्दी में उनके विषय में पर्याप्त कहा तथा लिखा गया है और आगामी शताब्दी वर्ष में पर्याप्त लिखा तथा कहा जाएगा। उनके सिद्धांतों के प्रति यावज्जीवन श्रद्धालु होने के कारण मैं यह सब कुछ नहीं कह रहा हूं, बल्कि निरंतर सर्वाधिक आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से यह सब कुछ लिख रहा हूं। नवोदित, स्वाधीन, संयुक्त तथा गतिशील भारत के विषय में स्वामीजी की जो कल्पना थी और जो हमारे लोकतंत्र के संस्थापक नेताओं के सामने आदर्श रूप में मान्य थी, वह स्वाधीन भारत के प्रथम तीस वर्षों में ही धूमिल होती जा रही है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि पूर्व की अपेक्षा यह समुचित अवसर है कि हम स्वामी जी की समस्त देन पर विचार करें और यह जानने का प्रयास करें कि कहां और क्यों हम मार्ग से विचलित हुए हैं?

स्वामी जी की अनेक उपलब्धियों में से एक प्रमुख उपलब्धि थी हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप सांस्कृतिक तथा संगठनात्मक आधार प्रस्तुत करना। यह इसलिए सम्भव हो सका था कि उनकी सीमातीत शक्ति एवं कुशाग्र बुद्धि केवल वैयक्तिक मोक्ष की प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील नहीं थी, अपितु वह अपने समाज के शारीरिक, नैतिक, भौतिक तथा धार्मिक उत्थान की दिशा में संलग्न थी।

संतों तथा सुधारकों की लम्बी पंक्ति में, वह पहले व्यक्ति थे, जिसने हिन्दुत्व अथवा वैदिक धर्म के द्वार अहिन्दू लोगों के लिए खोले थे।

उनकी उपस्थिति तथा उनके सैद्धांतिक उपदेशों ने उन हालात को समाप्त कर दिया था, जबकि एक हिन्दू अपने धर्म पर लज्जा का अनुभव करता था और ईसाई तथा इस्लाम मत को अंगीकार करके लज्जा से मुक्ति पा लेता था। बाद के काल में, हिन्दू धर्म में घुस आए विकारों तथा विकृतियों पर प्रहार करते हुए, जैसा कि उनका स्वभाव बन गया था, उन्होंने एक नारा लगाया था–"वेदों के धर्म की ओर वापस चलो।" उनके समस्त सामाजिक तथा धार्मिक सुधारों की आधारशिला यही थी। वेद परमात्मा के ज्ञान के प्रतीक हैं, वे सात्विक प्रमाण हैं, इसीलिए जन्म एवं जीवन के निकर्ष भी हैं।

इस सत्य के साथ वह वर्तमान हिन्दू धर्म पर अभियोग पत्र लेकर उपस्थित हुए। उनके 'सत्यार्थ प्रकाश' का अधिकांश भाग हिन्दू धर्म की अनेक विकृतियों–जन्म पर आधारित जाति का सिद्धांत, मूर्ति पूजा, चमत्कारवादिता, तीर्थ–यात्रा, पुरोहिती शोषण, पवित्रता की ठेकेदारी, रीति–रिवाज आदि की आलोचना पर आधारित है। सत्य के निर्णय की दिशा में उनके पास केवल दो सैद्धांतिक कसौटियां थीं.– "तर्क की तलवार और नैतिकता का आधार।" 'भारतवर्ष अंधकार से परिपूरित है' शीर्षक के अन्तर्गत, संक्षेपित पृष्ठों में आपने हिन्दू धर्म के असंख्य रीति–रिवाजों तथा सामाजिक आडम्बरों की कटु आलोचना करते हुए, मूर्ति–पूजा तथा मदिरों के विशाल प्रांगणों से जुड़ी तीर्थयात्राओं, संकीर्ण तथा अंधविश्वासपरक कर्मकाण्डों को व्यर्थ तथा सारहीन घोषित किया था।

जाति–प्रथा उन्मूलन

जातिवादी व्यवस्था की, उसकी अगणित वर्जनाओं एवं वरीयताओं के साथ, आपने आलोचना की और व्यक्तिगत जीवन में उसकी विकृतियों का खुलासा किया। जन्म के स्थान पर ज्ञान अथवा योग्यता को श्रेष्ठता की कसौटी निर्धारित करते हुए, आपने उस सामाजिक असमानता की समस्या

का समाधान प्रस्तुत किया था, जो हमारी सतत राजनीतिक दासता का कारण रही है और आज भी हमारे राष्ट्रीय जीवन की शक्ति का क्षय कर रही है।

एक आदर्श समाज के विषय में, आपकी मान्यतानुसार, वर्णों का विभाजन जन्म अथवा जाति के आधार पर न होकर गण अथवा ज्ञान के आधार पर होना चाहिए। वर्णों का निर्धारण भी स्कूल तथा कालिजों से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद राज्य द्वारा होना चाहिए।

आपने बड़ी तथा छोटी जाति में उत्पत्ति के आधार पर जाति–व्यवस्था के सिद्धांत को स्वीकार करके सर्वाधिक बल शिक्षा पर दिया था। यथार्थ में, आपने 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय तथा तृतीय अध्याय में इसी विषय पर बल दिया है। शिक्षा के क्षेत्र में सुधार विषयक उनके भागीरथ प्रयत्न अपने समय के सर्वाधिक अग्रगामी थे। आपने दीर्घकाल से विस्मृत गुरुकुलीन शिक्षा–पद्धति को, जिसमें बड़े तथा छोटे व्यक्ति के बालक एक ही स्तर पर, शहर के दूषित वातावरण से दूर रहकर, अध्यापक के स्नेहमय वैयक्तिक सम्पर्क के वरदान से पूरित शिक्षा पाने में समर्थ हो सकते हैं, पुनर्जीवित किया था।

चारों जातियों (जिनमें शूद्रों को भी अन्यों के समान शिक्षा दी जाये) में पुरुष तथा महिला वर्ग के लिए अनिवार्य शिक्षा का समर्थन करते हुए आपने चेतावनी दी कि इसके अभाव में देश की समृद्धि की कोई सम्भावना नहीं है। नारी–समाज के लिए समान शिक्षा का प्रतिपादन करने वालों में वह अग्रगण्य थे। विशेष रूप से उनका विश्वास था कि विवाहित जीवन की खुशियां भी पति तथा पत्नी दोनों के शिक्षित होने पर निर्भर करती हैं।

आपने नारी वर्ग का समर्थन किया और उसके लिए पुरुष के समान अधिकारों की वकालत की। आपने पुरुष के लिए एक विवाह का सिद्धांत रखा और सोलह वर्ष से पूर्व कन्या के विवाह का समर्थन नहीं किया। आपने यहां तक कहा कि एक अयोग्य एवं अनुपयुक्त व्यक्ति के साथ विवाहित होने की अपेक्षा एक कन्या का अपने पिता के घर में ही रहना अधिक अच्छा है। दोनों साथियों की पूर्व तथा पूर्ण स्वीकृति के अभाव में शादी के वह विरोधी थे। उन्होंने बार–बार इस बात पर बल दिया कि एक घर की सुदृढ़ शांति का आधार पति–पत्नी का पारस्परिक प्रेम एवं दायित्व की समान भागीदारी है। उन्होंने अपने अनुयायियों को वैदिक कालीन उन स्वर्णिम दिनों का स्मरण कराया, जब कि नारी सामाजिक जीवन के समस्त कार्यों में समान रूप से भाग लेती थी।

महर्षि दयानन्द उन लोगों में से प्रमुख थे, जिन्होंने एक मनीषी की दृष्टि से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखा था। हिन्दी यहां के बुद्धि

जीवियों तथा न्यायालय की भाषा कभी नहीं रही, फिर भी वह यहां के अधिकांश सामान्य लोगों की बोलचाल की भाषा थी, इसलिए उन्होंने यह भली प्रकार अनुभव कर लिया था कि स्वाधीन तथा संयुक्त भारत में अंग्रेजी के स्थान पर यही राष्ट्र भाषा हो सकती है। वह गुजरात के मोरवी नामक राज्य में पैदा हए थे। उनकी मातृभाषा गुजराती थी, किन्तु उन्होंने स्वयं को हिन्दी में शिक्षित किया और कालान्तर में हिन्दी में ही अपना महान कार्य करने का निश्चय किया। यह निश्चय भी उस अवस्था में था, जबकि उनका सम्पूर्ण प्रशिक्षण संस्कृत में हुआ था। यथार्थ में, उनकी प्रतिभा का दूसरा प्रतीक, उनकी प्रारम्भिक संस्कृतनिष्ठ भाषा, जिसमें आपने कुछ पुस्तिकाएं लिखी थीं, की अपेक्षा प्रवाहपूर्ण हिन्दी में लिखी उनकी अंतिम रचना, वेदभाष्य है।

हिन्दी को प्रमुखता

आपने सब प्रकार की शिक्षा में हिन्दी को प्रथम स्थान दिया था। इसका एक छोटा–सा उदाहरण जोधपुर के राजकुमार की शिक्षा के विषय में दिया गया परामर्श है, जो उनके स्वदेशी चरित्र का प्रतीक भी है। अन्य बातों के अतिरिक्त आपने विशेष रूप से लिखा था कि राजकुमार को संस्कृत तथा हिन्दी का ज्ञान अंग्रेजी से पहले कराना चाहिए।

स्वामीजी के जीवन का, अनेक प्रकार से, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य इस विश्वास को चुनौती देना था कि यह संसार विकारों का भण्डार है, अतः इसका त्याग कर देना चाहिए। आपने व्यक्ति के लिए मोक्ष–साधना का भी विरोध किया। आपने बताया कि जीवन के प्रति यह उदासीनता का सिद्धांत, व्यक्तिवादी चेतना और जातिवादिता, हमारे सामाजिक पराभव के प्रमुख कारण हैं। यथार्थ में स्वामी जी कर्मठ व्यक्ति थे। वह अतीत की सम्पन्नता से भली प्रकार अवगत थे और वर्तमान युग की नैतिकता को जानते थे। उनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने ज्ञान के माध्यम से संत की अवस्था का अर्जन किया था।

उनका जीवन तथा उनके गुण वैयक्तिक तथा ऐतिहासिक संदर्भो में उनके वास्तविक तेज का ज्ञापन करते हैं। यद्यपि, हम उनको महर्षि पुकारते हैं, पर उन्होंने अपने जीवन काल में ऋषि की उपाधि को भी अस्वीकार कर दिया था। हालांकि दस दशक पश्चात् उनकी भविष्यवाणियों पर किसी को भी संदेह नहीं होगा, पर उन्होंने भविष्य द्रष्टा कहे जाने को भी अंगीकार नहीं किया था। हालांकि उनके कुछ अति उत्साही अनुयायियों ने उनको नवीन धर्म का प्रवर्तक तथा सत्य का उपदेश देने

वाला कहा था, पर वह अपने जीवनकाल में, यह बात कहने में कभी पीछे नहीं रहे कि वह तो सत्य, प्राचीन धर्मग्रंथों, वेदों में निहित सत्य तथा धर्म का ही उपदेश दे रहे हैं। इन गुणों के विरोधी समाज में वह ऐतिहासिक पौराणिक संघर्षकर्ता के रूप में उभर कर आये थे। उनके चरित्र में स्वार्थपरायणता अथवा गुरुडम अथवा समझौतावादिता के सामने झुकना नहीं था। इन सबसे ऊपर, उस महान हिन्दू सुधारक का जीवन तथा धर्मोपदेश हमारे पुरातन युग की असाम्प्रदायिक सभ्यता का चित्रण करते हैं।

महर्षि ने अपने तर्कों की तीक्ष्ण धारा से हिन्दू, ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के उन तमाम पूर्वाग्रहों को काट दिया था, जो समस्त मानवता को आक्रान्त किये हुए थे। उन्होंने हमेशा सिद्धांतों का विरोध किया था, व्यक्तियों का नहीं।

यही कारण था कि अन्य धर्मों में आस्था रखने वाले लोगों ने भी स्वामीजी को अपने धार्मिक स्थलों पर उपदेश करने के किए आमंत्रित किया था। दूसरे धर्मों के नेताओं के साथ उनका मैत्री–भाव, उनकी एक धरोहर थी।

यथार्थ में, स्वामीजी की रुचि हजारों धार्मिक विश्वासों के मूल–सिद्धांतों के विश्लेषण में थी। एक धार्मिक सम्मेलन के बीच, एक राजा ने प्रत्येक धर्म के उपदेशक से उसके धर्म का सार जानना चाहा था। उसको परस्पर विरोधी हजारों उत्तर मिले और उसने निर्णय किया था कि कोई समुचित धर्म इसलिए नहीं है कि प्रत्येक की असत्यता के विषय में १११ प्रमाण मौजूद हैं। एक सच्चे संत ने राजा से मूल बातें जानने का आग्रह किया, जिस पर सब लोग सहमत हो गए थे। ये मूल बातें थीं–सत्य, ज्ञान और नैतिक जीवन, और संत ने कहा था कि यही सच्चा धर्म है।

मैं, स्वामीजी के विषय में, इसी सामान्य ज्ञान के आधार पर विचार करना चाहता हूं। मैं पाठकों को स्वामीजी के जीवन पर दृष्टिपात करने के लिए सजग करना चाहता हूं और इस परिणाम पर ले जाना चाहता हूं कि हम लोग सही रास्ते से कितने भटक गए हैं। मैंने ऊपर जिन बातों का उल्लेख किया है, उनमें से क्या एक का भी हमने उपार्जन किया है?

क्या हम अपने जीवन से जातिवादी व्यवस्था को दूर करने में समर्थ हुए हैं? क्या हम नारी वर्ग को अपने जीवन में समान अधिकार प्रदान करते हैं? क्या हम सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते हैं और उनको असत्य संसार की विकृत अनिवार्यता के रूप में अंगीकार नहीं कर लेते और क्या हमने जाति और धर्म पर आधारित शिक्षा की बजाय, सभी बच्चों के लिए शिक्षा को जन्म सिद्ध अधिकार बनाया है?

इस सन्दर्भ में, मैं राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की समस्या की दुर्गति का स्मरण दिलाना चाहता हूं। इस प्रश्न की दुखद स्थिति से, सिवाय हमारी कमियों के और कोई नतीजा नहीं निकल सकेगा।

सन् १८३७ में भारत सरकार ने घोषणा की थी कि संयुक्त प्रांत (आगरा व अवध) में फारसी लिपि में लिखी उर्दू राजभाषा होगी। १८६० में इसकी (उर्दू की) जगह देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी के पक्ष में एक आन्दोलन उभरकर आया था। उस समय भी कारण उतने ही मामूली थे, जितने कि आज हैं। लेकिन जब १८६१ में बिहार प्रदेश में राज्यभाषा के रूप में उर्दू का स्थान हिन्दी ने ले लिया, तो इसने उत्तर प्रदेश में आन्दोलन के लिए प्रेरणा दी। शीघ्र ही स्वामीजी ने इस आन्दोलन के पक्ष में अपना समर्थन व्यक्त किया। उनके अथक परिश्रम के परिणामस्वरूप आर्यसमाज ने इसके समर्थन में २९ प्रतिवेदन सरकार के समक्ष प्रस्तुत किए। हिन्दी के पक्ष में स्वामीजी का समर्थन हिन्दी की संयोजक–क्षमता के कारण था। वह जिस दृढ़ता के साथ अपने सिद्धांतों के साथ प्रतिबद्ध रहे, उसकी झलक हमें अंग्रेजी भाषा में उनके उपदेशों का अनुवाद किए जाने की मांग को निरंतर ठुकराते जाने में देखी जा सकती है। वह जानते थे कि उर्दू अथवा अंग्रेजी में उनके सिद्धांतों का अनुवाद हिन्दी के अध्ययन की उदासीनता को बढ़ावा देगा। इस प्रश्न के उत्तर में, 'भारत कब महान बन सकेगा', वह प्रायः कहते थे कि "जिस समय यहां धर्म, भाषा तथा लक्ष्य की एकता हो जायेगी।"

आज भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रश्न पर हम केवल अस्थिर ही नहीं हैं, वरन् हम शक्तिशाली भाषायीविवाद की ओर वापिस जा रहे हैं।

इन अंधकारमयी परिस्थितियों में, स्वामीजी का उदाहरण एक सुदृढ़ प्रकाश स्तम्भ के समान मौजूद है और वह उनका मार्ग–दर्शन कर रहा है, जिनमें उस मार्ग पर चलने का साहस तथा विश्वास है।

चौधरी चरण सिंह द्वारा रचित कृतियां

शिष्टाचार, १९४१. (२०१ पृष्ट)

हाउ टू एबोलिश जमींदारीः ह्विच एल्टरनेटिव सिस्टम टू एडाप्ट। (ज़मींदारी उन्मूलन कैसे करें: किस वैकल्पिक प्रणाली को अपनाएं) १९४७. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

एबोलिशन ऑफ ज़मींदारीः टू अल्टरनेटिव्ज। (जमींदारी उन्मूलनः दो विकल्प) १९४७. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (२६३ पृष्ट)

एबोलिशन ऑफ जमींदारी इन यू० पी०: क्रिटिक अंसरड। (उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलनः आलोचकों को जवाब) १९४९. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

व्हितहर कोआपरेटिव फार्मिंग? (सामूहिक खेती की दिशा?) १९५६. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश।

एग्रेरियन रिवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश। (उत्तर प्रदेश में कृषि क्रांति) १९५७. प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, गवर्नमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश १९५८ लखनऊ, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश। (६६ पृष्ट)

जॉइंट फार्मिंग एक्स–रैडः द प्रॉब्लम एंड इट्स सोल्यूशन। (संयुक्त खेतीः समस्या और समाधान) १९५९. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (३२२ पृष्ट)

इण्डियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्यूशन। (भारत की गरीबी और उसका समाधान) १९६४. एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई। (५२७ पृष्ट)

इण्डियन इकोनॉमिक पॉलिसीः दि गांधियन ब्लूप्रिंट। (भारत की अर्थनीतिः एक गांधीवादी रूपरेखा) १९७८. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (१२७ पृष्ट)

इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इण्डियाः इट्स कॉज़ एण्ड क्योर। (भारत की भयावह आर्थिक स्तिथिः कारन एवं निदान) १९८१. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (५९८ पृष्ट)

लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू० पी० एण्ड दि कुलक्स। (उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार एवं कुलक वर्ग) १९८६. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (२२० पृष्ट)

'विशिष्ट रचनाएंः चौधरी चरण सिंह' भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चरण सिंह द्वारा १९३३ और १९८५ के बीच लिखित २२ महत्वपूर्ण लेखों और भाषणों का संग्रह है। इस पुस्तक के अध्ययन से आज का पाठक वर्ग जान सकेगा कि मौजूदा समय की चुनौतियां न तो नई हैं और न ही समाधानहीन। इनसे निपटने के लिए एक मन–सोच अथवा जिगरा चाहिए, जो निश्चय ही धरा–पुत्र चरण सिंह में था। उनका लेखन उस प्रकाशस्तंभ की तरह है जो समुद्र में भटके हुए जहाजों को किनारे तक आने का रास्ता दिखाता है। उनके लेखन के आलोक में हम मौजूदा चुनौतियों को सही परिप्रेक्ष्य में न केवल समझ सकते हैं अपितु उनका समाधान भी पा सकते हैं। इन लेखों में उनकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के दर्शन होते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इन लेखों को सामाजिक लेखन, आर्थिक लेखन, राजनीतिक लेखन एवं उपसंहार – चार खण्डों में विभाजित किया गया है।

चौधरी चरण सिंह की अध्यात्मिक अंतश्चेतना और राजनीतिक मेधा महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गांधी से अनुप्रेरित रही, तो सरदार पटेल उनके नायक रहे। इन विभूतियों पर चौधरी साहब ने अपने विचार लेखों में प्रस्तुत किये हैं। जाति–प्रथा, आरक्षण, जनसंख्या नियंत्रण, राष्ट्रभाषा जैसे सामाजिक मुद्दों के साथ ही शिष्टाचार जैसे विरल विषय पर भी दो लेख **खण्ड एकः सामाजिक लेखन** में दिये गये हैं।

चौधरी साहब भारत की उन्नति का मूल आधार कृषि, हथकरघा और ग्रामीण भारत को मानते थे। उनकी दृष्टि में ग्रामीण भारत ही वह नियामक तत्व रहा जिसे प्रमुखता देकर देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है, साथ ही बेरोजगारी जैसी विकट समस्या को भी दूर किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में भूमि सम्बंधी सुधारों और जमींदारी समाप्त करने को लेकर चौधरी चरण सिंह पर धनी किसानों के पक्षधर होने के आरोप विरोधियों ने लगाये। उनका उन्होंने बेहद तार्किक ढंग से उत्तर दिया है। गांव–किसान और खेती के प्रति उपेक्षापूर्ण नीतियां एवं काले धन की समस्या जैसे तथा उपरोक्त विषयों पर केन्द्रित लेख **खण्ड दोः आर्थिक लेखन** के अन्तर्गत दिये गये हैं।

खण्ड तीनः राजनीतिक लेखन के अन्तर्गत भारत की लम्बी गुलामी के मूल कारणों का विश्लेषण, गांधी–चिंतन, देश में पहली गैर–कांग्रेसी जनता पार्टी की सरकार की आधारभूत नीतियां, देश विख्यात माया त्यागी कांड का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, भाषा आधारित राज्यों के खतरे आदि मुद्दों के अलावा उनके नायक सरदार पटेल की स्मृति पर आधारित लेख हैं। इसी खण्ड में चौधरी साहब के ऐतिहासिक महत्व के दो भाषण भी संकलित हैं, जो लोकशाही पर संकट और राष्ट्रीय विघटन के खतरों के प्रति सचेत करते हैं।

अंतिम **खण्ड चारः उपसंहार** है, जिसमें चौधरी साहब ने राजनीति, समाज नीति और देश से सम्बंधित अधिकतर मुद्दों पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

Charan Singh Archives
www.charansingh.org

मूल्य ₹६६